

# श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 41 — मथुरा में प्रवेश

5 October 2026



व्रज से चला लम्बा मार्ग एक स्वर्णिम द्वार पर समाप्त होता है, और समस्त लोकों के स्वामी पैदल मथुरा में प्रवेश करते हैं — नगर के सबसे निर्धन हाथों से वस्त्र और मालाएँ पाने के लिए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध के इस इकतालीसवें अध्याय में दोनों भाई मथुरा के द्वारों से भीतर चलते हैं और नगर के लोगों से एक-एक करके मिलते हैं — और हर किसी को वही मिलता है जो उसका हृदय आगे बढ़ाता है।

## अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, पूर्वार्ध)
- अध्याय: 41 (एकचत्वारिंश अध्याय)

- अध्याय शीर्षक: कृष्ण और बलराम का मथुरा में प्रवेश
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए)
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: यमुना-तट, मथुरा के बाहर एक उपवन, और नगर की सड़कें
- केंद्रीय विषय: अक्रूर की विनती; मथुरा में प्रवेश; धोबी, दर्जी और मालाकार सुदामा
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 41, श्लोक 1-52
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी संस्करण, दशम स्कन्ध पूर्वार्ध)

## पूर्व अध्याय का संदर्भ

मथुरा के मार्ग पर यमुना में स्नान करते हुए अक्रूर ने जल के भीतर अनन्त-शय्या पर विराजमान चतुर्भुज भगवान् नारायण के दर्शन किए थे और उन चरणों में शरणागति का स्तवन किया था। यह अध्याय उसी क्षण आरम्भ होता है जब वह दर्शन समाप्त होता है।

## जल में दिखाया गया रूप समेट लिया गया

अक्रूर अभी स्तुति कर ही रहे थे कि भगवान् ने उस रूप को चुपचाप अपने में समेट लिया, जैसे कोई नट अपना अभिनय समाप्त कर उसे रख देता है।

श्रीशुक उवाच

स्तुवतस्तस्य भगवान् दर्शयित्वा जले वपुः ।

भूयः समाहरत् कृष्णो नटो नाट्यमिवात्मनः ॥ १ ॥

*śrī-śuka uvāca stuvatas tasya bhagavān darśayitvā jale vapuḥ bhūyaḥ samāharat kṛṣṇo naṭo nāṭyam ivātmanah*

अर्थ: श्री शुकदेवजी ने कहा: अक्रूर जब स्तुति कर रहे थे, तब भगवान् श्रीकृष्ण ने जल में वह रूप दिखाकर उसे पुनः अपने में समेट लिया, जैसे कोई नट अपना अभिनय समेट लेता है। (स्कन्ध 10, अध्याय 41, श्लोक 1)

दर्शन लुप्त हुआ देखकर अक्रूर जल से बाहर आए, शीघ्रता से अपने नित्य-कर्म पूरे किए और विस्मय से भरे हुए रथ पर लौटे। श्रीकृष्ण ने ऐसे पूछा मानो कुछ जानते ही न हों: पृथ्वी पर, आकाश में या जल में तुमने अभी कौन-सा आश्चर्य देखा? तुम्हारी छलकती आँखें और खिला मुख कहते हैं कि कुछ अनोखा देखा है।

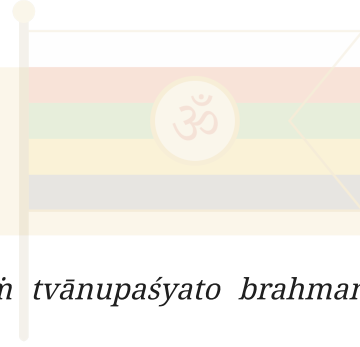


दर्शन समेट लिए जाने पर अक्रूर यमुना से विस्मय-भरे मुख के साथ लौटते हैं, और कृष्ण, मानो कुछ जानते ही न हों, पूछते हैं कि उन्होंने कौन-सा आश्चर्य देखा (श्लोक 2-5)।

अक्रूर का उत्तर भागवत की महान स्वीकारोक्तियों में से एक है: सारे आश्चर्य तो सबके आत्मा आप में ही बसते हैं, तो आपको सीधे देखते हुए मुझसे क्या अनदेखा रह सकता है?

यत्राद्भुतानि सर्वाणि भूमौ वियति वा जले ।

तं त्वानुपश्यतो ब्रह्मन् किं मे दृष्टमिहाद्भुतम् ॥ ५ ॥



*yatrādbhutāni sarvāṇi bhūmau viyati vā jale taṁ tvānupaśyato brahman kiṁ me dr̥ṣṭam ihādbhutam*

अर्थ: हे ब्रह्मन्, जब पृथ्वी, आकाश और जल के सारे आश्चर्य आप में ही स्थित हैं और मैं साक्षात् आपको देख रहा हूँ, तो मैंने यहाँ अलग से कौन-सा आश्चर्य देखा होगा? (स्कन्ध 10, अध्याय 41, श्लोक 5)

## रथ नगर पहुँचता है

ऐसा कहकर गान्दिनी-पुत्र ने रथ आगे बढ़ाया और दिन ढलते-ढलते बलराम और श्रीकृष्ण को मथुरा ले आए। मार्ग के हर पड़ाव पर देहात के लोग उमड़ आए और वसुदेव के दोनों पुत्रों को देखकर अपनी दृष्टि हटा न सके। नन्दजी और गोप, जो अक्रूर के नदी-तट पर रुकने के कारण छोटे मार्ग से आ गए थे, नगर के बाहर एक उपवन में प्रतीक्षा कर रहे थे। उनसे मिलकर श्रीकृष्ण ने विनय से झुके अक्रूर का हाथ थामा और हँसते हुए कहा कि वे रथ लेकर नगर में जाएँ और घर लौटें; वे स्वयं यहीं कुछ विश्राम करके पीछे आएँगे।

## अक्रूर उनके बिना प्रवेश नहीं करेंगे



प्राचीर के बाहर उपवन में कृष्ण झुके हुए अक्रूर का हाथ थामते हैं, जो विनती करते हैं कि वे उनके बिना मथुरा में प्रवेश नहीं कर सकते और प्रभु से अपना घर पवित्र करने की प्रार्थना करते हैं (श्लोक 9-16)।

दोनों को नगर के बाहर छोड़कर अकेले भीतर जाना अक्रूर के हृदय के लिए असह्य था।

अक्रूर उवाच

नाहं भवद्भ्यां रहितः प्रवेक्ष्ये मथुरां प्रभो ।

त्यक्तुं नार्हसि मां नाथ भक्तं ते भक्तवत्सल ॥ ११ ॥

*akrūra uvāca nāhaṁ bhavadbhyāṁ rahitaḥ pravekṣye mathurāṁ prabho tyaktuṁ nārhasi māṁ nātha bhaktaṁ te bhakta-vatsala*

अर्थ: अक्रूर ने कहा: हे प्रभु, आप दोनों के बिना मैं मथुरा में प्रवेश नहीं करूँगा। हे नाथ, हे भक्तवत्सल, मुझ अपने भक्त को आपको त्यागना उचित नहीं। (स्कन्ध 10, अध्याय 41, श्लोक 11)

उन्होंने विनती की कि प्रभु बलराम, अपने स्वजनों और गोपों के साथ पधारें और एक गृहस्थ के घर को अपनी चरण-धूलि से पवित्र करें। आपके चरण धोने वाला जल पितरों और देवताओं को सदा के लिए तृप्त करता है; उन्हीं चरणों को धोकर बलि ने यश, अतुल ऐश्वर्य और आपके अनन्य भक्तों की गति पाई; गङ्गा बनकर बहते हुए उसी जल ने तीनों लोकों को पवित्र किया, शिवजी ने उसे सिर पर धारण किया, और सगर-पुत्र उससे स्वर्ग पहुँचे। यदुकुल-रत्न और नारायण कहकर प्रणाम कर अक्रूर प्रतीक्षा करने लगे।

## प्रभु का वचन

श्रीभगवानुवाच

आयास्ये भवतो गेहमहमार्यसमन्वितः ।

यदुचक्रद्रुहं हत्वा वितरिष्ये सुहृत्प्रियम् ॥ १७ ॥

*śrī-bhagavān uvāca āyāsye bhavato geham aham ārya-samanvitaḥ yadu-cakra-druhaṁ hatvā vitarisye suhṛt-priyam*

अर्थ: श्रीभगवान् ने कहा: यदुकुल के शत्रु का वध करके मैं अपने बड़े भाई के साथ तुम्हारे घर आऊँगा और अपने प्रियजनों को आनन्द दूँगा। (स्कन्ध 10, अध्याय 41, श्लोक 17)

पहले कार्य, फिर आगमन। यह वचन लेकर, और उनके बिना भीतर जाने की उदासी हृदय में लिए, अक्रूर मथुरा में गए, कंस को अपना किया हुआ कार्य बताया और अपने घर लौट गए।

## मथुरा में प्रवेश

अथापराह्णे भगवान् कृष्णः सङ्कर्षणान्वितः ।

मथुरां प्राविशद् गोपैर्दिदृक्षुः परिवारितः ॥ १९ ॥

*athāparāṇḇe bhagavān kṛṣṇaḥ saṅkarṣaṇānvitaḥ mathurām prāviśad gopair didṛkṣuḥ parivāritaḥ*

अर्थ: फिर अपराह्ण में भगवान् श्रीकृष्ण, सङ्कर्षण के साथ और गोपों से घिरे हुए, नगर देखने की इच्छा से मथुरा में प्रविष्ट हुए। (स्कन्ध 10, अध्याय 41, श्लोक 19)

वे निर्भय होकर भीतर गए, और नगर देखने योग्य था: प्राचीर में ऊँचे गोपुर, स्फटिक के द्वारों पर सोने के किवाड़ और तोरण, ताँबे-पीतल के भण्डार, रक्षा करती खाई और चारों ओर उपवन। चौराहों पर भवनों, धर्मशालाओं और श्रेणी-सभाओं के बीच स्वर्णिम मण्डप थे; घरों के छज्जों से कबूतर और मोर बोल रहे थे, और कबूतरे वैडूर्य, हीरे, नीलम, मूँगे, मोती और पन्ने से जड़े थे। जल से सींची सड़कों पर फूल, जौ के अंकुर और खील बिखरे थे, और हर द्वार पर दही और चन्दन से लिपा, फूलों से घिरा, दीपों से सजा, लहराते पल्लवों वाला जल-भरा कलश था, साथ में केले के खम्भे, फलों से लदे सुपारी के वृक्ष और पताकाएँ।

## मथुरा की स्त्रियाँ

राजमार्ग से साथियों सहित आते वसुदेव के दोनों पुत्रों को देखने की उत्सुकता में नगर की स्त्रियाँ दौड़कर मार्ग के भवनों पर चढ़ गईं। वे जैसी थीं वैसी ही आई: वस्त्र और आभूषण उलटे-सीधे, जोड़े का एक आभूषण भूला हुआ, एक कान में कुण्डल, एक पैर में नूपुर, एक ही आँख में काजल। कोई भोजन छोड़कर आई, कोई तेल लगाए बिना स्नान किए, कोई कोलाहल सुनकर नींद से उठ भागी, और दूध पिलाती माताएँ शिशु

को रखकर दौड़ पड़ीं।

मतवाले गजराज की चाल से चलते कमलनयन प्रभु ने अपनी लीलामयी मुस्कान और चितवन से उनके मन हर लिए और उनकी आँखों को उत्सव दे दिया। उनकी उन्मुक्त मुस्कान और तीखी चितवन के अमृत से सींची गई वे आँखों के द्वार से उस आनन्दमूर्ति को भीतर ले आई और हृदय में आलिंगन कर पुलकित हो उठीं, और उन्हें न देख पाने की दीर्घ पीड़ा जाती रही।



जैसी थीं वैसी ही छतों पर दौड़ आई मथुरा की स्त्रियाँ दोनों भाइयों के दर्शन में डूबकर फूल बरसाती हैं, और ब्राह्मण पग-पग पर उनका सम्मान करते हैं (श्लोक 24-31)।

छतों से, आनन्द से खिले कमल-मुखों वाली वे स्त्रियाँ बलराम और श्रीकृष्ण पर फूल बरसाने लगीं, और पग-पग पर हर्षित ब्राह्मण दही, अक्षत, मालाओं, सुगन्ध, उपहारों और जल-पात्रों से दोनों भाइयों का सम्मान करने लगे। और नगर की स्त्रियाँ आपस में कहने लगीं:

ऊचुः पौरा अहो गोप्यस्तपः किमचरन् महत् ।  
या ह्येतावनुपश्यन्ति नरलोकमहोत्सवौ ॥ ३१ ॥

*ūcuḥ paurā aho gopyas tapaḥ kim acaran mahat yā hy etāv anupaśyanti nara-loka-mahotsavau*

अर्थ: नगरवासिनी स्त्रियाँ बोलीं: अहो, ब्रज की गोपियों ने कौन-सी महान तपस्या की होगी, जो वे मनुष्य-लोक के महोत्सव-रूप इन दोनों को निरन्तर देखती रहती हैं? (स्कन्ध 10, अध्याय 41, श्लोक 31)

## धोबी और दर्जी

आगे चलकर एक धोबी, जो रँगरेज़ भी था, उधर आया, और श्रीकृष्ण ने उससे उसके सबसे उत्तम धुले वस्त्र माँगे: हम दोनों योग्य पात्रों को उपयुक्त वस्त्र दो, तो तुम्हारा परम कल्याण होगा। किन्तु वह कंस का सेवक था और अपने स्वामी के अधिकार के मद में फूला हुआ था। उसने व्यंग्य किया — पहाड़ों-जंगलों में घूमने वाले तुम क्या सदा ऐसे वस्त्र पहनते हो, जो राजा का माल माँगते हो? जीना चाहते हो तो मूर्खों, तुरन्त

भागो, क्योंकि राजा के लोग धृष्टों को बाँधते, मारते और लूट लेते हैं। वह अभी डींग मार ही रहा था कि देवकीनन्दन क्रुद्ध हुए और केवल अँगुलियों के अग्रभाग से उस धोबी का सिर गिरा दिया। उसके सेवक गठरियाँ छोड़कर भाग गए और प्रभु ने वस्त्र ले लिए। दोनों भाइयों ने अपनी रुचि के दो-दो वस्त्र पहने; शेष गोपों में बाँट दिए और कुछ भूमि पर डाल दिए।

फिर एक वायक — एक दर्जी — प्रेम से भरा आया और उसने रंग-बिरंगे वस्त्रों के अलंकारों से उन्हें ऐसा सजाया कि वे उत्सव के लिए सजे दो युवा गजों जैसे शोभित हुए, एक श्याम और एक गौर। प्रसन्न होकर प्रभु ने उसे परलोक में अपना सारूप्य और इस लोक में सम्पत्ति, बल, प्रभाव, भगवत्स्मृति और इन्द्रियों की तीक्ष्णता प्रदान की।



स्नेह से भरा एक दर्जी दोनों भाइयों को रंग-बिरंगे वस्त्रों के अलंकारों से सजाता है, और प्रभु उसे अपना सारूप्य तथा इस लोक के सब वरदान देते हैं (श्लोक 40-42)।

## मालाकार सुदामा के घर

वहाँ से दोनों भाई मालाकार सुदामा के घर गए। उन्हें देखते ही वह उठा, भूमि पर सिर रखकर प्रणाम किया, आसन और पाद्य लाया, और अर्घ्य, मालाओं, तैयार ताम्बूल और चन्दन से उनकी तथा उनके साथियों की पूजा की। उसने कहा — आपके आगमन से हमारा जन्म सफल और कुल पवित्र हो गया; आज पितर, देवता और ऋषि मुझ पर प्रसन्न हैं। आप दोनों, समस्त जगत् के परम कारण, संसार की रक्षा और वृद्धि के लिए अपनी इच्छा से अवतरित हुए हैं। फिर आए इस अध्याय के हृदय-रूप शब्द।

न हि वां विषमा दृष्टिः सुहृदोर्जगदात्मनोः ।

समयोः सर्वभूतेषु भजन्तं भजतोरपि ॥ ४७ ॥

*na hi vāṁ viṣamā dṛṣṭiḥ suhṛdor jagad-ātmanoh samayoh sarva-bhūteṣu bhajantaṁ bhajator api*

अर्थ: आप दोनों की दृष्टि कभी विषम नहीं होती, क्योंकि आप जगत् के सुहृद् और आत्मा हैं, सब प्राणियों के प्रति समान — यद्यपि जो आपको भजता है, उसे आप भी भजते हैं। (स्कन्ध 10, अध्याय 41, श्लोक 47)

सुदामा ने प्रार्थना की — मुझे आज्ञा दीजिए, मैं आपकी क्या सेवा करूँ; क्योंकि आपके द्वारा किसी कार्य में लगाया जाना ही मनुष्य के लिए सबसे बड़ा वरदान है।



अपने साधारण घर में मालाकार सुदामा दोनों भाइयों की पूजा करता है, सर्वोत्तम फूलों की मालाएँ अर्पित करता है, और वर में केवल अविचल भक्ति, भक्तों से सौहार्द और सब प्राणियों पर दया माँगता है (श्लोक 43-51)।

## सुदामा ने जो वर माँगा

उनकी रुचि समझकर आनन्द से भरे मन वाले उस मालाकार ने सर्वोत्तम सुगन्धित फूलों की मालाएँ अर्पित कीं। उनसे सुशोभित और प्रसन्न श्रीकृष्ण और बलराम ने — जो स्वयं सब वरों के दाता हैं — शरणागत होकर झुके उस मनुष्य को वर माँगने को कहा।

सोऽपि वव्रेऽचलां भक्तिं तस्मिन्नेवाखिलात्मनि ।  
तद्भक्तेषु च सौहार्दं भूतेषु च दयां पराम् ॥ ५१ ॥

*so 'pi vavre 'calāṁ bhaktiṁ tasminn evākhilātmani tad-bhakteṣu ca sauhārdaṁ bhūteṣu ca dayāṁ parām*

अर्थ: उसने भी सबके आत्मा उन्हीं भगवान् में अविचल भक्ति, उनके भक्तों से सौहार्द और समस्त प्राणियों पर परम दया का वर माँगा। (स्कन्ध 10, अध्याय 41, श्लोक 51)

वह प्रार्थना पूरी करके प्रभु ने बिना माँगे भी दिया — वंश में बढ़ती सम्पत्ति, बल, दीर्घायु, यश और कान्ति — और अपने बड़े भाई के साथ वहाँ से चल दिए।

उस अपराह्न में चार मनुष्य एक ही प्रभु से मिले, और हर कोई वही लेकर लौटा जो उसने स्वयं आगे बढ़ाया था। सुदामा का श्लोक ही कुंजी है: उनकी दृष्टि कभी पक्षपाती नहीं; वे सबके आत्मा हैं, और बस प्रतिदान करते हैं। अपने स्वामी के वस्त्र और अपने अहंकार को पकड़े धोबी ने दोनों खो दिए। केवल रंगीन कपड़े और स्नेह वाले दर्जी को प्रभु का सारूप्य मिला। अपनी छत के नीचे उनकी उपस्थिति के सिवा कुछ न चाहने वाले अक्रूर को वचन मिला। और कोई उपहार न माँगने वाले मालाकार को उसके कहे तीनों प्रेम और घर-परिवार का कल्याण भी मिला। कृपा का आकार वही होता है जो हम उनके सामने बढ़ाते हैं।

## इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. जिसने प्रभु को देख लिया, उसके लिए कोई आश्चर्य शेष नहीं। कौन-सा आश्चर्य देखा, यह पूछे जाने पर अक्रूर ने कहा कि सारे आश्चर्य प्रभु में ही हैं। उनका दर्शन आश्चर्यों का हमारा पूरा संग्रह ही खाली कर देता है।
2. भक्त उनका संग माँगता है, उनके उपहार नहीं। अक्रूर केवल यह चाहते हैं कि उन चरणों की धूलि उनके घर को छुए। प्रेम की माप यह है कि हम उनका वियोग कितना कम सह सकते हैं।
3. प्रभु हमारा आतिथ्य स्वीकारने से पहले अपना कार्य पूरा करते हैं। अक्रूर को दिया उत्तर एक कर्तव्य से जुड़ा वचन है; दिव्य स्नेह उस कार्य को कभी नहीं टालता जिसके लिए वे अवतरित हुए।
4. निकटता पहचान नहीं है। स्त्रियाँ, ब्राह्मण और धोबी — सब उनसे हाथ भर की दूरी पर थे। समीपता किसी को नहीं बचाती; केवल वह हृदय उन्हें पाता है जो उन्हें पहचानता है।
5. सबसे बड़ा वर है भक्ति, सौहार्द और दया। कुछ भी माँग सकने पर सुदामा ने प्रभु में अविचल प्रेम, उनके भक्तों से स्नेह और हर प्राणी पर करुणा माँगी — यही चाहने योग्य का आदर्श है।

## एक भक्तिमय चिन्तन

मथुरा में कृष्ण जिनसे मिलते हैं, उनमें जो हमारे साथ रह जाता है वह फूल बेचने वाला निर्धन मनुष्य है। वह न ऋषि है, न धनी, न कुछ ऐसा करता है जिसे संसार लिखे। वह बस अपने घर पर, हाथ में फूल लिए, तब होता है जब प्रभु उसके द्वार तक चलकर आते हैं। वह महानता या उद्धार की भी याचना नहीं करता। वह सेवा में लगाए जाने की माँग करता है, और फिर प्रेम करते रहने की — प्रभु से, प्रभु के भक्तों से और हर जीव से। वह कुछ ऐसा नहीं चाहता जो उससे छीना जा सके, और प्रभु चुपचाप वे वरदान जोड़ देते हैं जिनका नाम लेना उसे सूझा ही नहीं। हमारी प्रार्थनाएँ उलटी चलती हैं: हम जोड़ माँगते हैं और उस एक वस्तु को भूल जाते हैं।

## एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज प्रभु को कुछ ऐसा अर्पित करें जो आपने स्वयं बनाया या कमाया हो — अपने हाथ के फूल, अपना पकाया भोजन, किसी ऐसे की सेवा जो बदले में कुछ न दे सके — और अर्पित करते समय सुदामा की त्रिविध प्रार्थना को अपना बना लें: प्रभु में अविचल भक्ति, उनके भक्तों से सच्चा सौहार्द और हर प्राणी पर वास्तविक दया। आरम्भ में धीरे-धीरे जपें: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

## उपसंहार

दशम स्कन्ध का यह इकतालीसवाँ अध्याय कृष्ण और बलराम को अन्ततः मथुरा की प्राचीरों के भीतर ले आता है। यमुना पर एक दर्शन समाप्त होता है, एक भक्त उनके साथ की भीख माँगता है, एक वचन कंस-वध की प्रतीक्षा करता है, और दोनों भाई उत्सव से सजे नगर में चलते हैं। राजा का अभिमानी सेवक अपना थामा हुआ खो देता है, एक दर्जी प्रभु के सारूप्य तक उठाया जाता है, और एक मालाकार वही एकमात्र धन माँगता है जिसे कोई छीन नहीं सकता। जब प्रभु हमारे द्वार पर खड़े हों, तब क्या माँगना है — यह हम सुदामा से सीखें।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

## संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी संस्करण), दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध), एकचत्वारिंश अध्याय।
- श्रृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: [kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-41-krishna-and-balarama-enter-mathura-hi.html](http://kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-41-krishna-and-balarama-enter-mathura-hi.html)

श्रीमद्भागवतम् विज़डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट